Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the *'Committee on Publication Ethics'*

Online ISSN: 2584-184X

Review Article

Contemporary Issues and Realism in Contemporary Hindi Poetry (1990–2000)

समकालीन हिंदी कविता (1990-2000) में समकालीन समस्या और यथार्थ

Dr. Nitin Bhika Patil[1*]
Department of Languages, Christ (Deemed to be University),
Yeshwanthpur Campus, Bangalore, Karnataka, India

Corresponding Author: * Dr. Nitin Bhika Patil

ABSTRACT

Contemporary Hindi poets have portrayed the problems of their time and society by firmly grounding their poetic expression in social reality. They have given voice to the contradictions, ironies, distortions, and anomalies of their age. The term **"contemporary issues"** refers to the major problems emerging within a particular creative period or historical context that directly affect the society of that time.

Contemporary Hindi poets have sensitively articulated the contradictions and complexities of their social environment. In an atmosphere of fear, anxiety, and tension in which human beings are compelled to live, life is no longer synonymous with joy and fulfilment; rather, it has become a narrative of suffocation, suffering, and anguish. Contemporary Hindi poetry has played an important role in providing society with a new direction and consciousness. It addresses the social contexts, questions, and events that hinder human progress and critically examines the conditions responsible for social and human suffering.

Thus, contemporary Hindi poetry serves not merely as a form of literary expression but also as a significant medium of social awareness and critical consciousness. By presenting the realities of its time, it seeks to question prevailing social structures and inspire reflection on the possibilities of human and social transformation.

KEYWORDS: Society, Consciousness, Social Issues, Realism, Contemporary Hindi Poetry, Social Reality, Human Suffering, Social Transformation.

समकालीन हिंदी कवियों ने अपने समय और समाज की समस्याओं का यथार्थ की ठोस भूमि पर खड़े होकर चित्रण किया है। उन्होंने अपने समय की विसंगतियों, विडम्बनाओं, विकृतियों को वाणी दी है। समकालीन समस्या से तात्पर्य है, सृजनात्मक दौर अथवा समय की वह प्रमुख समस्या, जो तत्कालीन समाज में प्रस्तुत होती है।उन्होंने अपने समय की विसंगतियों, विडम्बनाओं, विकृतियों को वाणी दी है। मानव समाज जिस भय तथा तनाव के वातावरण में जीवन व्यतीत कर रहा है, उसमें उसका जीवन उल्लास का पर्याय नहीं बल्कि घुटन और यंत्रणा की कथा है। समाज को नई दिशा और चेतना देने का कार्य समकालीन हिंदी कविता ने किया है। यह कविता उन सभी सामाजिक संदर्भों, प्रश्नों और घटनाओं का उल्लेख करती है जिनसे मानव की प्रगति अवरुद्ध है।

Manuscript Info.

- **ISSN No:** 2584-184X
- **Received:** 09-06-2024
- **Accepted:** 26-07-2024
- **Published:** 27-08-2024
- **MRR:2(8):**2024;22-27
- **©2024, All Rights Reserved.**
- **Peer Review Process:** Yes
- **Plagiarism Checked:** Yes

How To Cite

Nitin Bhika Patil. समकालीन हिंदी कविता (1990-2000) में समकालीन समस्या और यथार्थ. Indian Journal of Modern Research and Reviews: 2024;2(8):22-27.

कूटशब्द: समाज, चेतना, समस्या, यथार्थ, समकालीन कविता आदि।

© 2024 Dr. Nitin Bhika Patil. This is an open access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

परिचय

समाज की ज्ञानात्मक मनोवृति जो समाज को युग दृष्टि और विवेक शक्ति प्रदान करे, उसे सामाजिक चेतना कह सकते हैं। उसकी इस ज्ञानात्मक मनोवृति में उचित-अनुचित का बोध, दायित्व या कर्तव्य का ज्ञान, आदर्श की समझ और अधिकारों की जानकारी समाहित रहती है। 1990 से 2000 का कालखंड एक परिवर्तनशील कालखंड रहा है। सोवियत संघ के विघटन के साथ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लगभग सभी क्षेत्रों में अनिश्चितता, असंतोष, भय और विघटन के प्रभाव दिखाई दिये। साहित्य भी इन प्रभावों से अछूता न रह सका और इसी क्रम में हिंदी कविता के लिए भी यह समय विभिन्न संदर्भों में महत्वपूर्ण रहा। कविता नयी वैचारिक चेतना लिए जनवाद से आ जुड़ी। आलोकधन्वा, कुमार विकल, कुमार अंबुज, बोधिसत्व, अनामिका, बद्रीनारायण आदि कई कवियों ने समाज को वर्तमानबोध और भविष्यबोध के साथ अभिव्यक्त करने का कार्य किया। शायद ही कोई क्षेत्र रहा होगा जिसको इस दशक के कवियों ने स्पर्श न किया हो।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर ही वह स्वयं को अभिव्यक्त करता है। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्ति तथा समाज का आपसी सामंजस्य होता है। समाज की विभिन्न परिस्थितियाँ व्यक्ति के जीवन पर पूर्ण रूप से निर्भर रहती हैं। कुछ परिस्थितियाँ व्यक्ति के अनुकूल तथा कुछ उसके विरुद्ध होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति ऐसी अनुकूल परिस्थितियों की कामना करता है जो उसके साथ-साथ संपूर्ण समाज को भी लाभ प्रदान करें। परंतु सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा कई अन्य क्षेत्रों में कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जो मनुष्य के सामने समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति पर इन समस्याओं का प्रभाव पड़ता रहता है, जैसी समस्या होती है, वैसा ही व्यक्ति का उसके प्रति व्यवहार बनता है। यदि व्यक्ति की समस्या पूरे समाज की समस्या बन जाती है तो सारा समाज ही उस समस्या के प्रति उठ खड़ा होता है। समस्याओं के प्रति व्यक्ति के मन में विभिन्न भाव उत्पन्न होते हैं, जिसमें से प्रमुख है - आक्रोश का भाव। जब व्यक्ति-मन में क्षोभ का भाव उत्पन्न होता है तो उसी क्षण उसके मस्तिष्क में समस्याओं को सुलझाने तथा उन पर काबु पाने हेतु विचारों की एक श्रृंखला जन्म ले लेती है। यही श्रृंखला आगे चलकर सामाजिक चेतना का रूप धारण करती है जो विभिन्न संदर्भों में विचारों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है। यह संदर्भ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक के साथ सांस्कृतिक और धार्मिक भी होते हैं। आज समाज की नीव इन्हीं संदर्भों पर टिकी है तथा इन संदर्भों के अंतर्गत दृष्टिगत होनेवाली विभिन्न स्थितियों और समस्याओं को समकालीन हिंदी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत करते आ रहे हैं।

समकालीन समस्या से तात्पर्य है, सृजनात्मक दौर अथवा समय की वह प्रमुख समस्या, जो तत्कालीन समाज में प्रस्तुत होती है। समकालीन हिंदी कवियों ने अपने समय और समाज की समस्याओं का यथार्थ की ठोस भूमि पर खड़े होकर चित्रण किया है। उन्होंने अपने समय की विसंगतियों, विडम्बनाओं, विकृतियों को वाणी दी है। मानव समाज जिस भय तथा तनाव के वातावरण में जीवन व्यतीत कर रहा है, उसमें उसका जीवन उल्लास का पर्याय नहीं बल्कि घुटन और यंत्रणा की कथा है। समाज को नई दिशा और चेतना देने का कार्य समकालीन हिंदी कविता ने किया है। यह कविता उन सभी सामाजिक संदर्भों, प्रश्नों और घटनाओं का उल्लेख करती है जिनसे मानव की प्रगति अवरुद्ध है। कवि कुमार अंबुज अपनी 'उदासी' नामक कविता में लिखते हैं-

"इस उदासी में शामिल हैं कुछ बच्चे
जो पतंग उड़ाने की उम्र में बना रहे हैं पतंग
कुछ लड़कियाँ हैं जो गुड्डे खेलने के मौसम में
बिस्तर पर नग्न हैं
बूढ़े हैं कुछ
जो गलियों में बरगद के पत्तों की तरह उड़ रहे हैं
सफ़ेद बालोंवाली कुछ औरतें हैं
जो जुए मारती हुई कोस रही हैं बुढ़ापा
कुछ नौजवान हैं नशे में धुत्त"[1]

यहां कवि समाज की बाल-मजदूरी से लेकर, युवाओं में जड़ें जमाती नशे और स्त्री शोषण से लेकर वृद्धावस्था तक की ज्वलंत समस्याओं को रेखांकित करता है। किन्तु व्यथा इतनी विकट है कि उसकी सारी परतों को खोलना कई बार कवि के लिए चुनौती बन जाता है। कुमार विकल 'पहचान' नामक कविता में विकट परिस्थितियों से स्वयं को दूर नहीं रख पाते परन्तु अपनी सीमाओं से भी बखूबी परिचित हैं। वे लिखते हैं-

"लेम्प पोस्ट को मैं भी जला सकता हूँ
लेकिन
स्कूल से कभी न लौटने वाली बच्ची की
माँ के आँसुओं का धर्म नहीं बता सकता
जैसे
जख्मियों के घावों पर
मरहम तो लगा सकता हूँ
लेकिन उनकी चीख़ों का मर्म नहीं बता सकता हूँ"[2]

सामाजिक समस्याओं से अवगत होते हुए भी कवि की यह विवशता, उसके दर्द की अभिव्यक्ति है। समस्या और यथार्थ समाज से जुड़े वे दो तत्व हैं, जिनके उतार-चढ़ाव से समाज में चेतना के विस्तृत होने में प्रोत्साहन मिलता है। सामाजिक समस्या और यथार्थ परिस्थितियों की समझ और अध्ययन से साहित्यकार की आंतरिक इच्छाएँ बाहर आती हैं और यही इच्छाएँ समाज में चेतना को प्रसारित करने में लाभदायक सिद्ध होती हैं।

समाज में फैले बाह्यांडम्बर, विडम्बना तथा विभिन्न परिस्थितियों से समाज समस्याओं में जकड़ जाता है परंतु कोई भी स्थिति अंतिम नहीं होती। समाज की प्रत्येक स्थिति में बदलाव संभव हैं। जिसके लिए आवश्यकता होती है - चेतना की। समकालीन कवियों ने स्वयं समाज की स्थितियों को आत्मभूत किया तथा भोगा था। अतः उन्होनें समाज की इन्हीं बिगड़ती परिस्थितियों को बदलने का प्रयास, अपने काव्य में सामाजिक चेतना को प्रवाहित करके किया है। आलोकधन्वा ने अपने काव्य संग्रह 'दुनिया रोज बनती है' में समाज की यथार्थ परिस्थिति को प्रस्तुत कर सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। अपनी कविता 'जनता का आदमी' में वे उस ईमानदार आदमी की ओर इशारा करते हैं, जिसे माँ के गर्भ में ही गोली मार दी जाती है। उसका एकमात्र कसूर यह है कि कहीं वह ईमानदार बन कर समाज की विकारग्रस्त स्थितियों में बदलाव न कर दे। वे कहते हैं-

© 2024 Dr. Nitin Bhika Patil. This is an open access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

"अब मेरी कविता एक ली जा रही जान की तरह बुलाती है
भाषा और लय के बिना केवल अर्थ में
उस गर्भवती औरत के साथ
जिसकी नाभि में सिर्फ इसलिए गोली मार दी गयी
की कहीं एक और ईमानदार आदमी पैदा न हो जाय।"[3]

यह वर्तमान ही नहीं भविष्य की परिवर्तनता तक पर अंकुश रखने वाली सुधारविरोधी शक्तियों की कार्यप्रणाली का खुलासा है। कुमार अंबुज भी समाज की इन्हीं बिगड़ती स्थितियों की ओर इशारा करते हैं। उनके काव्य को पढ़कर ज्ञात होता है कि इस समाज में व्यक्ति को अपने मनोवांछित कार्य करने की छूट नहीं है। उसे सदैव दूसरों की इच्छानुसार एक साँचे में ढाला जाता रहा है। अपनी कविता 'पन्द्रह साल पहले बिछड़ गयी शहनाज के लिए कुछ कविताएँ' में वे कहते हैं-

"मुझे पता है लेकिन
तुम उस समय के कवि हो
जब लड़की को कहा जाता है 'प्रेम करो'
और लड़की के माना करने पर
गोली मर दी जाती है।"[4]

वही चंद्रकांत देवताले अपनी कविता 'हिंसक समय में' लिखते हैं-

"मुझे याद है दिया-बत्ती के वक्त
माँ के साथ प्रार्थना के लिए खड़ा रह जाता था
अब उसी वक्त घरों में भून दिया जाता है
औरतों और बच्चों को"[5]

समकालीन कवि समाज की इस दिन-प्रतिदिन बिगड़ती स्थिती को सुधारने के आकांक्षी हैं। वे परिस्थितियों के बदलाव के लिए समाज में नवचेतना का विकास करना चाहते हैं।

आधुनिक काल की प्रगतिवादी कविता को छोड़कर आम आदमी साहित्य और समाज से हमेशा ही अवांछित-सा रहा है। परंतु समकालीन कविताओं में स्थिति बदली हुई नजर आती है। यहां वह निरंतर अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है और अपनी समस्याओं से संघर्ष करता है। इस काल में एकांत श्रीवास्तव, अरुण कमल आदि सभी कवि प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से उसे अपने काव्य का विषय बनाते हैं। एक आम आदमी परिवार तथा समाज में कभी अपनी इच्छाओं को अभिव्यक्त नहीं कर पाता। उसकी छोटी-छोटी अभिलाषाएँ होती हैं, जो शायद ही कभी पूरी हो पाती हैं? समस्याओं से घिरा यह आम आदमी अपमानित जीवन, पारिवारिक अशांति, दुविधा ग्रस्त जीवन जीते हुए भी स्थितियों से लड़ना नहीं छोड़ता। अरुण कमल अपने काव्य संग्रह 'नये इलाक़े में' सामान्य रूप से आम आदमी की पीड़ाओं को प्रस्तुत कर उसे परिस्थितियों से लड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। वे लिखते हैं-

"बिलकुल निहत्था पर हाथ बिना ऊपर उठाये
मैं हत्यारों से मिलने जाना चाहता हूँ
X X X
जाना चाहता हूँ उसकी तरफ से
जो सबसे कमजोर हैं"[6]

कवि द्वारा आमजन का प्रतिनिधी बनकर उसकी लड़ाई लड़ने के लिए तत्पर होना यहां दोनों के मध्य एक नये संबंध का सूचक बनता है। वह उसे आगे धकेलकर केवल पीछे से प्रौत्साहित नहीं करता बल्कि उसकी और से मौर्चा लेता है। किन्तु रचनाकार जानता है कि यह संघर्ष सभी सफल होगा जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी और भूमिका को समझते हुए आगे बढ़ेगा। अतः वह आम आदमी को लड़ने के लिए प्रेरित करता है वहीं मंगलेश डबराल जैसे में कहते हैं-

"कहीं से चला आता है संगतकर का स्वर
कभी-कभी वह यों ही दे देता है उसका साथ
यह बताने के लिए कि वह अकेला नहीं है
और वह फिर से गाया जा सकता है
गाया जा चुका राग"[7]

यह राग फिर से गाना एक नयी पहल का सूचक है। साथ ही कवि समाज में परिवार से बिछड़ चुके लोगों के अस्तित्व तथा उसकी पहचान की भी बात करता है। वह लिखता है-

"शहर के पेशाबघरों और अन्य लोकप्रिय जगहों में
उन गुमशुदा लोगों की तलाश के पोस्टर
अभी भी चिपके दिखते है
जो कई बरस पहले दस-बारह साल की उम्र में
बिना बताए घरों से निकले थे"[8]

समकालीन कविता में अभिव्यक्त आम आदमी का जीवन और उसका वातावरण हिंसा, शोषण, भुखमरी, गरीबी, विषमता, अन्याय-अत्याचार के साथ कई मूलभूत समस्याओं से घिरा है। ये कवि व्यक्ति के बहाने समाज की संवेदनहीनता पर चिंता व्यक्त करते हैं।

आम आदमी सदा समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति के साथ-साथ देश के निर्माण तथा विकास में मौलिक योगदान देता रहा है। परंतु इन सब बातों का श्रेय कभी भी उसे नहीं दिया गया है। वह केवल मीडिया और बाजार के मुखपृष्ठों और विज्ञापनों में ही नजर आया है। समाज में उस आम आदमी की सुरक्षा तथा उसके अस्तित्व की कोई निश्चितता नहीं है। समस्याओं के चक्रव्यूह में उलझे इसी सामान्य जन की पीड़ा और द्वंद्व को स्पष्ट करते हुए एकांत श्रीवास्तव कहते हैं-

"किस बात पर हंसू
किस बात पर रोऊँ
किस बात का समर्थन किस बात पर विरोध जताऊँ
हे राजन! कि बच जाऊँ"[9]

समकालीन कवियों का आम आदमी के साथ एक आत्मीय रिश्ता है। उन्होंने आम आदमी की समस्याओं तथा उसके आक्रोश को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। हाशिए पर खड़े व्यक्ति को लेकर समाज में चेतना प्रवाहित करने का कार्य़ पूरी प्रमाणिकता के साथ किया है।

महागरीय जीवन को यथार्थ के साथ प्रस्तुत करना समकालीन हिंदी कविता की अपनी अलग विशेषता रही है।

© 2024 Dr. Nitin Bhika Patil. This is an open access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

आलोकधन्वा, कुमार विकल, बोधिसत्व, बद्रीनारायण आदि कवियों ने महानगरीय जीवन की विडंबनाओं को स्पष्ट कर वहाँ बढ़ते परायेपण, अजनबीपन और अकेलेपन को अभिव्यक्ति दी है। नगरों में बढ़ते तनाव, भयग्रस्त स्थिति तथा व्यक्ति की बदलती मानसिकता को उजागर किया है। इन कवियों ने नगरीय परिवारों के विखंडन और टूटते रिश्तों का चित्रण किया है-

"शहर में इस तरह बसे
कि परिवार का टूटना ही बुनियाद हो जैसे
न पुरखे साथ आए न गाँव न जंगल न जानवर
शहर में बसने का क्या मतलब है
शहर में ही ख़त्म हो जाना?"[10]

'शहर में ही खत्म हो जाना' महानगरों में बढ़ रहे एकाकीपन के वातावरण की उस वीभत्सता पर टिप्पणी है, जहां व्यक्ति अपने परिवार तथा समाज से काटा-सा अनुभव कर रहा है। समकालीन कवियों ने व्यक्ति मात्र को इन सब परिस्थितियों से मुक्ति देने का प्रयास किया है। महानगरीय यातनाओं को भोगने वाले साधारण व्यक्ति को अपने काव्य के माध्यम से चेतना देने की सजगता दर्शायी है। रशियन कवि व्लादीमिर मयकोव्स्की इसी यातना को प्रस्तुत करते हैं। उनकी अभिव्यक्ति को राजेश जोशी अनुवादित करते हुए कहते हैं-

खिड़कियाँ बाँट देती हैं शहर के विशाल नरक को
छोटे-छोटे नरकों में
बिजली के खम्भों के नीचे लाल राक्षस मोटर गाड़ियाँ
ठीक कान के ऊपर बजाती हैं हार्न।
और उधर, साइनबोर्ड के नीचे, कर्ज़ पर लाई गई मछली के साथ
गिरा दिया गया एक बूढ़ा, झुकता है ढूँढ़ने
अपनी ऐनक, ज़ोर-ज़ोर से सुबकता है जब एक ट्राम
झटके खाती, चौंधिया देती है आँखों को
साँझ के धुँधलके में ।
गगनचुम्बी इमारतों के पिछवाड़े, भरे हुए धधकते अयस्कों से
जहाँ खड़खड़ाते रहते हैं गाड़ियों के इस्पात
एक हवाई-जहाज़ गिरता है आख़िरी चीख़ के साथ
सूर्य की दुखती आँखों की टपकती कीच में ।
तभी रोशनी के कम्बल में पड़ती हैं सलवटें
अपनी वासना को बाहर उलीचती है रात
लम्पट और पियक्कड़ !
और गली के सूर्य के उस पार सबसे करुण दृश्य
थुलथुल चाँद को डुबोता है अवांछित कबाड़ में।[11]

आज महानगरों में एकाकीपन का वातावरण बनता जा रहा है, व्यक्ति अपने परिवार तथा समाज से काटा-सा अनुभव कर रहा है। समकालीन कवियों ने व्यक्ति मात्र को इन सब परिस्थितियों से मुक्ति देने का प्रयास किया है। महानगरीय यातनाओं को भोगनेवाले साधारण व्यक्ति को समकालीन कवि अपने काव्य के माध्यम से चेतना देने का प्रयास करते हैं।

विश्व में भारत का स्थान एक कृषि प्रधान देश के रूप में है। भारत की लगभग आधी जनता गावों में निवास करती है। जहां रहते हुए आए दिन उसे नई-नई समस्याओं से जूझना पड़ता है परन्तु फिर भी भारतीय किसान और खेतिहर मजदूर अपनी खुशी को कभी खंडित नहीं होने देता है। 1990 से 2000 का समय राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आमूल-चूल परिवर्तनों का समय रहा है। लेकिन इन बदलावों के मध्य भी किसान के संसार में कोई सकारात्मक हलचल नहीं हुई है। वह निरंतर प्रकृति से लेकर सत्तासीनों के स्वभाव से त्रस्त रहा है। समकालीन कवियों ने ग्रामीण जीवन, खेत-खलिहान, किसान-जीवन तथा पारिवारिक जीवन का सूक्ष्मता से चित्रण किया है। आलोकधन्वा, सत्यपाल सहगल, कुमार अंबुज, वीरेन डंगवाल आदि कवियों में किसान जीवन तथा आंचलिक परिवेश पर काव्य सृजन कर भारतीय किसान के घर परिवार तथा उसके दैनिक जीवन को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है।

भूमंडलीकरण के दौर में जहाँ एक ओर देश विकास की राह पर अग्रसर है, वहीं दूसरी ओर देश में किसान कर्ज की मार से त्रस्त होकर आत्महत्या कर रहे हैं। कवि आलोकधन्वा इन परिस्थितियों से संवेदना पाकर अपनी कविता 'गोली दागों पोस्टर' में आक्रोशपूर्ण स्वर में कहते हैं-

"जिस जमीन पर
मैं अभी बैठकर लिख रहा हूँ
जिस जमीन पर मैं चलता हूँ
जिस जमीन में बीज बोता हूँ
जिस जमीन से अन्न निकालकर मैं
गोदाम तक ढोता हूँ
उस जमीन के लिए गोली दागने का अधिकार
मुझे है या उन दोगले जमीदारों को जो पूरे देश को
सुदख़ोर का कुत्ता बना देना चाहते है"[12]

आंचलिक जीवन के समस्त अभावों से किसान जीवन की दुर्दशा और उत्पन्न क्षोभ को समकालीन कवियों ने प्रमुखता से काव्य का विषय बनाया है। इन कवियों ने कहीं-कहीं प्रकृति के मनोरम चित्रों के साथ त्योहारों और उत्सवों का भी चित्रण किया है।

समकालीन कविता की यह प्रमुख विशेषता रही है कि इसमें मजदुर वर्ग के स्वर की वापसी दृष्टिगत होती है। प्रगतिवादी कविता के बाद मजदुर वर्ग का स्वर यहां पुनः स्थान पाता है। वस्तुतः 1990 से 2000 तक के कालखंड में आए परिवर्तनों से अनेक लोग ग्रामीण क्षेत्र को छोड़कर महानगरों की ओर पलायन के लिए विवश हुए जहां रोजी-रोटी के साधन रूप में मजदूरी ही उनका सहारा बनी। कवियों ने इन मजदूरों के जीवन को गहन यथार्थ और संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। यह वह वर्ग है जो दिन-रात कड़ी मेहनत करता है और जिससे पूँजीपति वर्ग अपना घर भरता है। जिसका आर्थिक शोषण ही नहीं किया गया बल्कि उसके सौन्दर्य प्रतिमानों और जीवन-बोध पर भी सवाल उठाए गए हैं। दूसरों को महल देने वाला यह सर्वहारा सदियों से स्वयं फुटपाथ पर सोने को विवश है। मजदूरों की इसी दयनीय स्थिति पर ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं-

"शहर के बीचों-बीच
सड़क के किनारे
खड़े दो बिजली के खम्भे
और उनके बीच में

© 2024 Dr. Nitin Bhika Patil. This is an open access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

थकी-हारी हाथ-गाड़ी
रात होते ही
क्यों झोपड़ी में बदल जाती है"[13]

सब सुख सुविधाओं का निर्माता मजदूर अंत में सभी सुखों से वंचित कर दिया जाता है पर फिर भी वह मानवीय मूल्यों को नहीं त्यागता बल्कि अभावों के बीच भी मेल-मिलाप की संस्कृति को बचाए रखता है। वरिष्ठ कवि चंद्रकांत देवताले मजदूर और पूँजीपतियों की स्वभावगत भिन्नता को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-

"तुम भूखों की झोपड़ियों में घुसे
और वहाँ भी तुम्हें प्रसाद मिला
तुम्हारी गाँठ से दमड़ी तक नहीं गयी।"[14]

इस काल का कवि श्रमशील व्यक्ति और उसके श्रम के प्रति अपनी गहन संवेदना निरंतर बरकरार रखता है। वह व्यवस्था के अंग-प्रत्यंग की सम्यक व्याख्या करते हुए अभिव्यक्त करता है कि कैसे मजदूर ही नहीं उसके बच्चे भी इस व्यवस्था के शिकार है। राजेश जोशी बाल मजदूरी की समस्या को रेखांकित करते हुए लिखते हैं-

"कोहरे से ढकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं
सुबह सुबह
बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे एक सवाल की तरह
काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?"[15]

समकालीन कवियों ने मजदूरों की वेदना, उनकी संवेदना और उनके आक्रोश को दर्ज किया है। भूमंडलीकरण के समय में जहाँ अधिक मात्र में तकनीक और अभियांत्रिकी साधनों के प्रयोग से मजदूरों पर भुखमरी का गहन साया पसर गया है। समकालीन कवियों ने मजदूर वर्ग के प्रति सहानुभूती दर्शाते हुए व्यवस्था में निहित अर्थहीनता को वाणी दी है।

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री जीवन की समस्याओं, विडंबनाओं तथा यातनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। अनामिका, कात्यायनी, सुशीला टाकभौरे, निर्मला पुतुल आदि ने नारी जीवन की इच्छा, आकांक्षा, मानसिक दशा, पीड़ा, यातना आदि को स्पष्ट कर स्त्री में चेतना लाने का एक सक्षम प्रयास किया है। इनकी कविताओं में जहाँ एक ओर स्त्री केवल माँ, बहन, बेटी, प्रेमिका आदि से हटकर जागरूक तथा आधुनिक नारी के रूप में प्रदर्शित हुई है। वहीं दूसरी ओर इस संकटपूर्ण समय में स्त्री के संकट और भय भी निरंतर शब्दबद्ध हुए हैं। अपनी कविता 'कुटुम्ब' में अनामिका ने इसी असज वातावरण को स्पष्ट करते हुए लिखा है-

"अचानक ही दरवाजे पर 'खट्' सी हुई
और एक भगदड़ मची।
चीजें लगी टूटने-फूटने।
सीढ़ियाँ उतरने और चढ़ने लगा गुस्सा।
और एक साथ ही शुरू हो गये रोने धोने
डरने-पीटने, हँसने-लोटने
के अनंत सिलसिले"[16]

समकालीन कविता में पुरुष कवियों ने भी स्त्री की अस्मिता और पहचान को लेकर अपने भावों को व्यक्त किया है। कुमार अंबुज अपनी कविता 'अनिवार्य स्त्री' में स्त्री-जीवन की अस्मिता को खोजने का प्रयास करते हैं-

"उसकी समस्त संभावनाओं को
धीरे धीरे असंभव कराते रहे हम
और वह अपनी दुर्बल काया की
मुट्ठी भर आस्तियों की चुटकी भर मज्जा से
हमें असभ्यताओं में खोजती रही"[17]

मंगलेश डबराल नारी पर पुरुष द्वारा हो रहे अत्याचारों को अपनी कविता 'स्त्रियाँ' में अभिव्यक्त करते हैं। वासना में धुत्त पुरुष कैसे स्त्री को अपनी अय्याशी का साधन मात्र मानता है इसे वे एक सामान्य स्त्री के वैश्या बनने की कहानी में अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं -

"उन्हें ले जाया जाता है निर्जन रोमांचक यात्राओं में
खतरनाक कगारों तक
वासना के धुएँ से भरी शानदार इमारतों में
जहाँ पियक्कड़ अय्याश उन पर सवारिन गँठते हैं
उन्हें कोड़ो से फटकारते हैं"[18]

स्त्री-जीवन की समस्याओं के साथ समकालीन कवियों ने स्त्री-मन की आंतरिक संवेदनाओं को भी उजागर किया है। एक परिवार में उसकी छवि के विभिन्न रूपों को उकेरा हैं। आलोकधन्वा एक माँ के आंतरिक भावों को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

"माँ जब भी नयी साड़ी पहनती
गुनगुनाती रहती
हम माँ को तंग करते
उसे दुल्हन कहते
माँ तंग नहीं होती
बल्कि नया गुड देती
गुड में मूँगफली के दाने भी होते"[19]

स्त्री के जीवन का प्रवाह सरल नहीं है, उसमें अनेक उतार-चढ़ाव तथा समस्याएँ विद्यमान है। समकालीन कवियों ने स्त्री जीवन, उसकी समस्याओं और भोगी यातनाओं के साथ उसके मन की आंतरिक संवेदनाओं को बड़ी गहराई से स्पष्ट किया।

समकालीन कविता के क्षेत्र में जाति और वर्ग विहीनता की संकल्पना का विरोध करने, दलितों के अधिकारों की रक्षा करने तथा उन्हें समाज में योग्य स्थान दिलवाने के लिए कवियों ने शासन वर्ग तथा शोषक वर्ग के विरुद्ध अपनी चेतना को विस्तृत किया है। दलितों को

© 2024 Dr. Nitin Bhika Patil. This is an open access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

उनके अधिकारों से वंचित रखने वाले समाज के विरुद्ध इन्होंने आवाज उठाई है। विशेषककर दलित कवियों जैसे ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्यौराज सिंह बैचेन, जयप्रकाश कर्दम, सुराजपाल चौहान, सदेश तनवर आदि ने अपनी कविताओं के माध्यम से इस हाशियाकृत समाज में चेतना लाने का प्रयास किया है। मोहनदास नैमिश्यराय ने अपने काव्य संग्रह 'आंदोलन' में दलित के शोषण, उस शोषण की प्रतिक्रिया को बताते हुए लिखा है-

"दलितों के सीने जब
छलनी होते हैं
शब्द उभरते हैं
शब्द बनाते हैं धारदार
जहर बुझे चाकू की तरह"[20]

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने कविता संग्रह 'बस्स! बहुत हो चुका' में दलितों को वाणी प्रदान की है। उन्होंने दलितों के अधिकार वंचन के साथ उनकी पीड़ा, संवेदना, मानसिक भयावहता को भी प्रदर्शित किया है। ब्राह्मणवादी संस्कृति का विरोध करते हुए वे अपनी कविता 'शायद आप जानते हों' में सवाल उठाते हैं-

"चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों।"[21]

दलित कवियों ने आंबेडकरवादी विचारधारा को सामने रखते हुए ब्राह्मणवादी और पूँजीवादी वर्ग के प्रति अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति दी है। परिणामतः दलित कविताओं में संघर्ष और चेतना का प्रवाह दृष्टिगत होता है। दलित कवि एन. आर. सागर कहते हैं-

"हमारा संघर्ष है
अधिकार पाने के लिये
शासन पर कब्जा जमाकर
सत्ता हथियाने के लिए
और शक्ति के बल पर
धन, धरती छीनकर
शोषकों को गुलाम बनाने के लिए"[22]

समकालीन कविता में दलितों के प्रति विशेष स्थान दृष्टिगत होता है। इस काल के लगभग सभी कवियों ने समाज से जुड़े, दबे, कुचले तथा शोषित वर्ग की समस्याओं को मुखर वाणी प्रदान कर सामाजिक चेतना का बीज बोने का सफल प्रयास किया है।

समकालीन हिंदी कवियों ने बदलती परिस्थितियों से उभरे शोषण तथा दबाव की नीति को समाज के सामने रखा। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्र में हो रहे बदलाओं से उन्होनें समाज को अवगत कराया। वे समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं इसलिए इन कवियों ने समाज की बिगड़ती स्थिति को दर्शाते हुए आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। गाँव से लेकर महानगरों की विद्रूपताओं में किसान, मजदुर, स्त्री, दलित आदि सभी पिसे जा रहें हैं। उनके मन की झटपटाहट को इन कवियों ने यथार्थ के साथ अंकित किया है। समकालीन हिंदी कविता में प्रमुख रूप से किसान और मजदुर स्वर की वापसी मिलती है। उनकी समस्याओं को कवि पाठकों के सामने रखते हैं।

संदर्भ

1) कुमार अंबुज - किवाड़, पृ. सं. 30
2) कुमार विकल - निरूपमा दत्त मैं बहुत उदास हूँ, पृ. सं. 29
3) आलोकधान्वा - दुनिया रोज बनती है, पृ. सं. 30, 31
4) कुमार अंबुज - किवाड़, पृ. सं. 60
5) चंद्रकांत देवताले - पत्थर की बैंच, पृ. सं. 60
6) अरुण कमल - नये इलाक़े में, पृ. सं. 23
7) मंगलेश डबराल - आवाज भी एक जगह है, पृ. सं. 14,15
8) मंगलेश डबराल - हम जो देखते है, पृ. सं. 15
9) एकांत श्रीवास्तव - अन्न है मेरे शब्द, पृ. सं.104
10) आलोकधन्वा - दुनिया रोज बनती है, पृ. सं. 92
11) व्लदीमिर मयकोव्स्की - http://kavitakosh.org/kk/महानगर_का_नरक_/_व्लदीमिर_मयकोव्स्की
12) आलोकधन्वा - दुनिया रोज बनती है, पृ. सं. 29
13) ओमप्रकाश वाल्मीकि - बस्स! बहुत हो चुका, पृ. सं. 83
14) चंद्रकांत देवताले - पत्थर की बैंच, पृ. सं. 8
15) राजेश जोशी - प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं. 74, 75
16) अनामिका - अनुष्टुप, पृ. सं. 38, 39
17) कुमार अंबुज - किवाड़, पृ. सं. 52
18) मंगलेश डबराल - आवाज भी एक जगह है, पृ. सं. 19
19) आलोकधन्वा - दुनिया रोज बनती है, पृ. सं. 25
20) मोहनदास नैमिशराय - आग और आंदोलन, पृ. सं. 38
21) ओमप्रकाश वाल्मीकि - बस्स! बहुत हो चुका, पृ. सं. 13
22) एन. आर. सागर - आजाद है हम, पृ. सं. 41

Creative Commons (CC) License
This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution–Non-Commercial–No Derivatives 4.0 International (CC BY-NC-ND 4.0) license. This license permits sharing and redistribution of the article in any medium or format for non-commercial purposes only, provided that appropriate credit is given to the original author(s) and source. No modifications, adaptations, or derivative works are permitted under this license.

© 2024 Dr. Nitin Bhika Patil. This is an open access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/